'राजा हरिश्चंद्र': भारतीय सिनेमा का मंगलारंभ

डॉ. सुरभि विप्लव

संपर्क : 9404823570

भारतीय सिनेमा अपने जन्म से ही सामान्य जनमानस में निहित विचार, ईमानदारी और न्याय दर्शन से अंतर्भूत रहा है। हजारों वर्षों से लोक के अन्तर्मन में चलने वाली हरिश्चंद्र की कथा शास्त्रीय रूप में पौराणिक कथा का रूप लेकर भारतीय वांगमय में दर्ज है। महात्मा गांधी जैसा महान व्यक्तित्व भी अपने ऊपर राजा हरिश्चंद्र नाटक के प्रभाव को स्वीकार करते थे। यह कथा अनेकों कला रूपों में असंख्य तरीकों से अभिव्यक्त होती रही है। सिनेमा से पूर्व पेंटिग, नृत्य, गीत, बिरहा, नौटंकी, पारसी रंगमंच, जात्रा जैसे विविध रूपों में इस जनप्रिय कथा का प्रयोग होता रहा है। इन सभी कला परम्पराओं के बाद प्रारंभ होती है फ़िल्म कला की। कोई भी नई कला अपनी पूर्ववर्ती कलाओं से ही कथ्य और कल्पनाशीलता के गुर सीखती है। भारतीय सिनेमा के जनक 'धुंडीराज गोविंद फाल्के (1870-1944)' द्वारा निर्मित और निर्देशित पहली हिंदी फीचर फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र (1913)' को भी इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

'राजा हरिश्चंद्र' पहली और पूर्ण भारतीय फ़िल्म है जिसे सार्वजनिक रूप से गिरगाँव, मुंबई स्थित तत्कालीन कोरोनेशन सिनेमा में प्रदर्शित किया गया था। यह सिर्फ फ़िल्म नहीं थी अपितु पूरे भारत वर्ष में संप्रेषण का एक नया विज्ञान, नई भाषा तथा नया व्याकरण था जिसे फाल्के गढ़ रहे थे , जिसके सूत्र आज तक गतिमान है। यह भारत कि पहली फ़िल्म इसलिए भी है कि कथा, अभिनेता, सह-कलाकार, लोकेसन तथा निर्देशक भी भारतीय थे। अब प्रश्न उठता है कि दादा साहब फ़ाल्के जो पहली फीचर फ़िल्म का प्रारम्भ पौराणिक कथा 'राजा हरिश्चंद्र' से ही क्यों किए ? किसी अन्य विषय का भी चुनाव कर सकते थे। मसलन उस समय शेक्सपीरियन थियेटर का विश्व सिनेमा में बोलबाला था। उनके नाटकों पर फ़िल्म बना सकते थे। फ्रांस, जर्मनी और ब्रिटेन की फिल्मी धारा की सफलता को बहुत ही संजीदगी से समझ-बूझ रहे थे। समस्त फिल्मी तकनीक को विदेश से लेकर आए लेकिन विचार और रूप ? सबकुछ भारतीय ! आखिर क्यों? यही है तत्कालीन भारतीय राष्ट्रवाद का नजरिया। इसके लिए भारतीय परंपरा के साथ उनके जुड़ाव और आधुनिकता के मनोविज्ञान को समझना जरूरी है, जिसके द्वंद्व ने उन्हे भारतीय सिनेमा का पितामह बना दिया। उस समय अंग्रेजी साम्राज्य की आबोहवा का विरोध भारतीय जनमानस में था लेकिन उसका प्रत्यक्ष प्रतिवाद सिनेमा में संभव नहीं था। अतः किसी पौराणिक कथा या मिथक का सहारा ही लिया जाना संभव था। हजारों वर्षों से लोक के अन्तर्मन में चलने वाली हरिश्चंद्र की कथा शास्त्रीय रूप में पौराणिक कथा का

रूप लेकर भारतीय वाङमय में दर्ज थी। नानी, दादी की कहानियों और स्कूली नाटकों में राजा-रानी के रूप में राजा हरिश्चंद्र और रानी तारामती की कथा सर्वोच्च रही है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी के बच्चे इसे ही सुनते हुए बड़े हुए थे। इसीलिए तत्कालीन दर्शकों में ईमानदारी और न्याय का भारतीय मनोविज्ञान भी एक सीमा तक हरिश्चंद्र की कथा से निर्मित हुआ था।

तत्कालीन पारसी थियेटर, नौटंकी सहित अन्य लोकरंग में भी हरिश्चंद्र की कथा की लोकप्रियता से फ़ाल्के बखूबी परिचित थे। वे भारतीय समाज को फ़िल्म के द्वारा सत्य, अहिंसा, न्याय और ईमानदारी की राह भी दिखाना चाह रहे थे। चूंकि मूक फ़िल्म की संप्रेषणीयता की सीमा को समझ रहे थे इसीलिए जनमानस की स्मृति में प्रचलित कथा के प्लाट का चुनाव भी एक बड़ी समझदारी थी, ताकि मूक भाषा के बावजूद भी दर्शक पर इस फ़िल्म की गहरी छाप पड़ सके। हरिश्चंद्र कथा के बरअक्स सत्य के मार्ग पर चलते हुए दर्शक के अवचेतन में सुषुप्त राष्ट्रवादी आग को हवा भी दी जा सके। इस तरह से इस फ़िल्म के माध्यम से प्रकारांतर से जहां अन्याय पूर्ण सत्ता का विरोध था वहीं व्यावसायिकता को भी एक साथ साधने में सफलता मिल रही थी। यही कारण था कि फ़ाल्के ने इसी फीचर फ़िल्म का चुनाव करके भारतीय सिनेमा का मंगलाचरण किया। फाल्के भारतीय भाषाओं और संस्कृतियों के विद्वान होने के साथ-साथ स्टील कैमरे की फोटोग्राफी के ज्ञाता थे। भारतीय पुरातत्व विभाग की नौकरी स्वदेशी आंदोलन के कारण छोड़ दिये थे। उनमें विशिष्ट रूप से राजनीतिक दार्शनिक और राष्ट्रवाद की समझ भी थी। वे भारतीय मूल के सौंदर्यशास्त्र से ओत-प्रोत फ़िल्म निर्माण करना चाहते थे जो पारसी, तमाशा और नौटंकी जैसे प्रदर्शनकारी कलाओं जैसा लोकप्रिय मनोरंजन तो हो ही साथ ही एक राष्ट्रीय बाज़ार का भी निर्माण भी कर सके। इसीलिए इसकी तकनीक को समझने और फ़िल्म निर्माण की कला सीखने के लिए लंदन गए। तत्कालीन 'बाइस्कोप' पत्रिका के संपादक से सलाह लिए और सिनेमा कंपनियों, स्टूडियो और फैक्ट्रियों का सघन दौरा किया। जब

वे भारत वापस आए तो पच्चीस हजार रुपए का कैमरा और फ़िल्म निर्माण संबंधी अन्य सामग्री भी साथ लाए। जिसकी परिणति थी फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र'। इस फ़िल्म के प्रचार-प्रसार के लिए एक नया तरीका अपनाया जिसके विज्ञापन में लिखा गया 'सिर्फ़ तीन आने में देखिये दो मील लंबी फ़िल्म में 57 हजार चित्र।' इसे कोरेनेशन थियेटर में इसे रिलीज किया गया जिसमें पौराणिक गाथा को देख कर दर्शक वाह-वाह कर उठे। अहम बात यह है कि आगे चलकर 'राजा हरिश्चंद्र' के बाद भी दादा साहब फाल्के ने जिन फिल्मों का निर्माण किया उनमें से कई फिल्में भारतीय पौराणिक कथाओं पर ही आधारित थी, मसलन मोहिनी भस्मासुर (1913), सत्यवान सावित्री (1914), लंका दहन (1917), श्री कृष्ण जन्म (1918), और कालिया मर्दन (1919)। 03 मई, 1913 को जब फाल्के 'राजा हरिश्चंद्र' को सार्वजनिक रूप से रिलीज कर रहे थे तो उस समय विश्व सिनेमा के महान अभिनेता और फ़िल्मकार 'चार्ली चैप्लिन' अभिनय की लोक प्रिय दुनिया में अभी पाँव पसार रहे थे और 1921 तक आते-आते पहली फ़िल्म का निर्माण कर पाये।

इस फ़िल्म में भारतीय पौराणिक परंपरा को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया। मशहूर चित्रकार 'राजा रवि वर्मा' द्वारा बनाई गयी हरिश्चंद्र उनकी पत्नी और पुत्र की पेंटिग की झांकी से ही यह फ़िल्म शुरू होती है। चूंकि यह फ़िल्म मूक थी अतः दर्शकों को समझने के लिए प्रत्येक दृश्य से पूर्व अंग्रेजी और हिन्दी में दिशा निर्देश दिया गया था।

इस प्रकार से 'राजा हरिश्चंद्र' सिर्फ़ पहली फ़िल्म ही नहीं थी बल्कि पूरे भारत में संप्रेषण के एक नए कला माध्यम का आविष्कार भी थी, जिसमें दादा साहब फाल्के विज्ञान, तकनीक, भाषा, व्याकरण और नए जीवन का सृजन कर रहे थे। इस फ़िल्म में विदेशी तकनीक को छोड़कर सब कुछ भारतीय मिट्टी में रचा-बसा था। इसी फ़िल्म से मनोरंजन के भारतीय बाजार में नए रूप (फ़िल्म) का उत्पादन प्रारम्भ हुआ था। यहीं पर फाल्के अभिनय को नई जमीन दे रहे थे। इसी जमीन पर आगे चलकर पूंजी-बाजार के खाद-पानी से अभिनेता-नायक-महानायक (Actor-Star-Mega Star) तक की यात्रा में आज भारतीय स्टार सिस्टम की अधिरचना हमारे सामने खड़ी है। फ़िल्म 'राजा हरिश्चंद्र' भारतीय सिनेमा की नींव थी जिस पर आज अनेक बहुआयामी प्रायोगिक फिल्मों का महल बनता जा रहा है। आज जब हम इस तिथि को याद करते हैं तो पाते हैं कि हमारे जीवन में सिनेमा के बिना सब कुछ अधूरा सा है शायद इसलिए कि सिनेमा में हमें हमारे जीवन का अंश दिखाई देता है। कहानियाँ हमारे जीवन के इर्द-गिर्द की होती हैं । इसीलिए आज का दिन 03 मई हमें एक उत्सव के रूप में मनाने का दिन तो है ही साथ ही हमारी सिनेमाई यात्रा के गंभीर सिंहावलोकन का भी दिन है।

(**परिचय :** लेखिका वर्तमान में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के प्रदर्शनकारी कला विभाग में अतिथि प्राध्यापक पद पर कार्यरत हैं।)